जून १९९७ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

आत्म-कथन

[कैसे सज्जन लोग] - सयाजी ऊ बा ल्विन

अपनी स्मरणशक्ति पर बहुत जोर लगाने पर भी मुझे याद नहीं आ रहा कि सयाजी ऊ बा ल्विन से मेरा पहला परिचय कहां और कब हुआ था! यह तो निश्चय है कि बर्मी आजादी के कुछ समय पश्चात ही उनसे परिचय हो गया था। अवश्य ही किसी सार्वजनीन आयोजन में हुआ होगा। हो सकता है रामकृष्ण मिशन सोसायटी या रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम में हुआ हो, क्योंकि मैं इन दोनों संस्थाओं से लगभग बीस वर्षों से जुड़ा रहा और सयाजी ऊ बा ल्विन वहां के आयोजनों में अक्सर भाग लेते रहे। हो सकता है बर्मी सरकार के किसी आयोजन में अथवा अन्य किसी सार्वजनीन आयोजन में मिले हों, क्योंकि सयाजी ऊ बा ल्विन बर्मा के प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेता थे और मेरा भी बहुआयामी सार्वजनीन जीवन था। प्रारंभिक परिचय चाहे जहां हुआ हो, परंतु इतना निश्चित है कि इसे घनिष्टता में बदलते हुए देर नहीं लगी।

सयाजी ऊ बा ल्विन इतने हँसमुख और खुशमिजाज थे कि सार्वजनीन जीवन में जुड़े हुए किसी भी व्यक्ति के लिए उनका घनिष्ट हो जाना सहज था। मेरी और उनकी उम्र में एक पीढ़ी का अंतर था परंतु यह अंतर हमारी मित्रता में कभी बाधक नहीं बना। वे जब-जब मुझे मिलते, उनकी आंखों में मेरे प्रति मित्रताभरा प्यार ही उमड़ता हुआ दीखता। पहले वे केवल हर वर्ष हमारे यहां होने वाले दीपावली के उत्सव में ही सम्मिलित होते रहे। फिर तो इसके अतिरिक्त यदा-कदा किसी भी छुट्टी के दिन घर चले आते थे। उन्हें भारतीय भोजन का, विशेषकर आलू-पूरी का बहुत शौक था। भले किसी भी बहाने से आएं, उनके साथ जितना समय बीतता वह बहुत आह्लादकारी होता था। उनके पास बैठा हुआ कोई भी व्यक्ति कभी ऊब नहीं सकता था। और फिर हम तो बहुत घनिष्ट हो चुके थे।

मुझे खूब स्मरण है। एक बार जब वे घर आए तो हँसते हुए बोले, "ऊ गोयन्का मैं तुमसे कुछ मांगने आया हूं।" मैं सोच रहा था कि सयाजी क्या मांगेंगे? मेरी उत्सुकता को शीघ्र ही दूर करते हुए बोले "डरो मत, इस बार मैं तुमसे स्कूल के लिए चंदा मांगने नहीं आया हूं। मैं तो अपनी स्कूल के लिए तुम्हारे एक पुत्र को मांगने आया हूं। तुम बर्मी नागरिक हो। जानता हूं तुम्हारा मानस राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत है। तुम्हारे सभी पुत्रों को 'म्योमा राष्ट्रीय स्कूल' में पढ़ना चाहिए। परंतु मेरे कहने से एक को तो भेजो।" मैंने कहा, "सयाजी, मेरे पुत्र तो आप के पौत्र समान हैं। यह तो उनके लिए सौभाग्य की बात होगी।"

मैं अपने अनुभव से जानता था कि बच्चों के लिए यह प्रस्ताव कितना ठीक था। मैं बर्मा की पुरानी राजधानी मांडले में जन्मा और वहीं मेरी पढ़ाई हुई थी। परंतु रंगून की तरह मांडले में भी प्रवासी भारतीयों ने एक छोटा-सा भारत बना रखा था। लगभग सभी प्रांतों के लोग वहां बसे हुए थे और सब की अपनी-अपनी पाठशालाएं, अपनी-अपनी स्कूलें थीं। मैंने मांडले की मारवाड़ी पाठशाला में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त की और आगे की स्कूली शिक्षा खालसा स्कूल में। इन स्कूलों में लगभग सभी बच्चे भारतीय थे। अतः उन्हीं के साथ पढ़ता और खेलता-कूदता। बर्मी सहपाठी न होने के कारण शुद्ध बर्मी लहजे में बात-चीत करने का अभ्यास नहीं हो पाया। हमारी स्कूल में बर्मी एक भाषा के रूप में अवश्य पढ़ाई जाती थी। अतः लिखना-पढ़ना तो आ गया, परंतु जैसे चाहिए वैसे बोलना नहीं आया। परिवार के व्यापार में सम्मिलित होने पर धड़ल्ले से बर्मी बोलने लगा, पर शुद्ध बर्मी लहजा तो नहीं ही सीख पाया। यह कमी हमेशा अखरती रही, आज भी अखरती है। मेरे पुत्र इस कमी के शिकार न हों। इसीलिए मैंने सयाजी ऊ बा ल्विन के सुझाव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। बर्मी स्कूल में जाने के लिए सबसे पहले मेरे दूसरे पुत्र बनवारी ने उत्सुकता प्रकट की। अतः दूसरे दिन उसे मैं अपने साथ लेकर म्योमा स्कूल गया और उसे सयाजी के हवाले कर आया।

बनवारी पर सयाजी का विशेष स्नेह था। उन्होंने इसका नाम 'मौं श्वे' रखा। कहते थे कि यह व्यापारी का बेटा है तो बड़ा होकर खूब व्यापार करेगा और बहुत धन कमायेगा। अतः इसके लिए मौं श्वे (कुमार स्वर्ण) बहुत उपयुक्त नाम है। सयाजी मौं श्वे की बहुत देखभाल करते थे। कभी-कभी उनसे मेरी बात होती तो कहते, "मौं श्वे ठीक पढ़ रहा है, चिंता मत करो, मैं उस पर विशेष ध्यान दे रहा हूं। उसे खूब अच्छी शिक्षा मिलेगी।"

मुझे क्या चिंता होगी! सामान्य स्कूली पढ़ाई के साथ-साथ उसे राष्ट्रीय भावनाओं की शिक्षा भी तो मिल रही थी।

मैं चाहता था कि मेरे पुत्र जिस देश में जन्मे हैं और पल रहे हैं उसके प्रति अपने उत्तरदायित्व को खूब समझें। व्यापारी के घर जन्मे हैं अतः व्यापार करना तो सीखें ही, परंतु व्यापार अधिकाधिक धन संग्रह के लिए ही न हो। अपनी कमाई देशवासियों के सहायतार्थ भी लगाना सीखें। ब्रह्मदेश ने हमारी तीन पीढ़ियों का भरण-पोषण किया है और अब चौथी पीढ़ी यहीं पल रही है। इस देश के प्रति कृतज्ञतापूर्ण मनोभाव होना अनिवार्य था। ऐसा वे घर में तो देखते ही थे, पर स्कूल में भी ऐसी भावना भरी जानी आवश्यक थी।

मेरा सौभाग्य था कि मेरे साथ उत्साही युवकों का एक ऐसा दल था जो कि किसी भी प्रकार की सेवा के लिए सदा तत्पर रहता था। आजादी के कुछ समय बाद ही रंगून के फसफल क्वार्टर में बड़ी भयंकर आग लगी। मध्य रात्रि होते-होते सारा मोहल्ला आग की लपेट में आ गया। उन दिनों उस क्षेत्र में केवल बांस और बांसपट्टियों के कच्चे घर थे जो आग के लिए ईंधन बन गए। अग्नि-पीड़ित लोग त्राहि-त्राहि करते हुए जलती झोपड़ियों के बाहर निकल भागे। पर कहीं कोई आसरा नहीं था। ऐसी अवस्था में इस युवक मंडली ने जी-तोड़ काम किया। रातों-रात हजारों लोगों के लिए भोजन पकाया और सुबह होते-होते अग्नि पीड़ितों में बांट

दिया। यह भोजनदान लगातार तीन दिनों तक चला। तदनंतर सरकार ने इन पीड़ितों को बसाने का काम अपने हाथ में ले लिया। ऊ बा ल्विन ने यह सब देखा तो उसने मुझे और मेरे साथियों को बहुत साधुवाद दिया।

उसके कुछ दिनों बाद ही रंगून से लगभग १०० मील उत्तर में हैंजडा नगर में उससे भी अधिक भयंकर आग लगी जिसकी चपेट में लगभग सारा शहर आ गया। इस पर मेरे मित्र हैंजडा ऊ म्या और सयाजी ऊ बा ल्विन दोनों ने वहां भी अग्नि-पीड़ितों के लिए सेवा करने का आह्वान किया। काम कठिन था। क्योंकि वहां कार्यकर्ताओं के निवास आदि सुविधाओं का अभाव था। तो भी सेवाभावी युवकों के साथ हम वहां गए और लगभग एक सप्ताह तक बृहद भोजन दान का काम चलता रहा। सयाजी ऊ बा ल्विन इससे बहुत प्रसन्न हुए। इसी प्रकार अन्य प्रसंगों पर भी जहां हजारों लोगों के लिए भोजनदान देने का अवसर प्रकट होता वहां यह युवा मंडली सदा आगे रहती। सयाजी ऊ बा ल्विन हमारे इस सेवाभाव के सदा प्रशंसक और प्रोत्साहक रहते और कहते मौं श्वे को भी ऐसा ही सेवाभावी बनना है। उनकी शिक्षा सभी विद्यार्थियों के मानस में निःस्वार्थ सेवाभाव जगाती थी।

***

सयाजी ऊ बा ल्विन बर्मा के उस युग के युवक नेता थे जबकि सारे देश में राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो रही थी। सन १९२०-२१ में भारत में महात्मा गांधी का असहयोग आंदोलन चल रहा था, जिसने वहां के लोगों में स्वाधीनता का मंत्र फूंका था। विदेशी हुकूमत की गुलामी किसे अच्छी लगती है? बर्मी लोगों में भी राष्ट्रीयता का भाव जोरों से जाग रहा था। विशेषकर कॉलेज के युवा विद्यार्थियों के मानस में राष्ट्रीयता का प्रबल तूफान उठ रहा था।

उन्होंने ब्रिटिश शासन के खिलाफ और विशेषकर यूनिवर्सिटी के अधिकारियों के खिलाफ असहयोग का शंख बजाया। सभी समझदार लोगों को यह खूब समझ में आ रहा था कि उन दिनों अंग्रेजी स्कूलों तथा विश्वविद्यालय की शिक्षा-प्रणाली साम्राज्यवादी नीति को बल प्रदान करती थी। ऊंची शिक्षा प्राप्त करने पर कुशाग्रबुद्धि युवकों को प्रशासनिक शिक्षा देकर शासनतंत्र में जोड़ दिया जाता। उनकी सारी ऊर्जा, कार्यकुशलता ब्रिटिश साम्राज्यवाद को सबल बनाने में ही लगती रहती। देश का बुद्धिशाली शिक्षित वर्ग साम्राज्यवाद का कल-पुर्जा बन कर रह जाता। उसमें राष्ट्रीय भावना जागती ही नहीं और जागती भी तो टिक नहीं पाती, पनप नहीं पाती। शीघ्र ही मृतप्राय हो जाती। बल्कि धीरे-धीरे उनका दृष्टिकोण साम्राज्यशाही का पोषक और राष्ट्र का विरोधी बन जाता।

इस दुरावस्था से छुटकारा पाने के लिए देश में स्थान-स्थान पर राष्ट्रीय स्कूलों का संस्थापन आवश्यक प्रतीत हुआ। इस क्षेत्र में सयाजी ऊ बा ल्विन ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। रंगून के श्वेडगोन पगोडा रोड पर उन्होंने 'म्योमा राष्ट्रीय स्कूल' की स्थापना की। तदर्थ आवश्यक भवन-निर्माण के लिए उन्होंने सारे बर्मा देश में घूम-घूम कर चंदा इकट्ठा किया। म्योमा की पढ़ाई का मापदंड तो यथाशक्ति ऊंचा रखा ही गया, इसके अतिरिक्त शिक्षालय के सभी विद्यार्थियों की रग-रग में राष्ट्रीयता की भावना कूट-कूट कर भरी गयी। इस स्कूल के कई स्नातक भविष्य के राष्ट्र-नेता बने। यहां की पढ़ाई बर्मी माध्यम से होती रही। इस कारण बर्मी भाषा और बर्मी साहित्य के उत्थान को भी प्रबल सहारा मिला।

सयाजी को बर्मी भाषा से गहरा प्यार था, जो कि स्वाभाविक था। मेरे यहां घर पर कभी किसी छुट्टी के दिन ऊ पारगू, ऊ तो जिन, ऊ माघ और कभी-कभी ऊ सां ठुन तथा ऊ ता म्या जैसे हिंदी के जानकार बर्मी साहित्यकारों की गोष्ठी जमती थी और साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा होती रहती थी। हम चाहते थे कि बर्मी और हिंदी साहित्य में पारस्परिक आदान-प्रदान हो। इस निमित्त योजनाएं बनती रहती थीं और उनके क्रियान्वयन के कदम उठाए जाते थे। कभी-कभी ऊ ता म्या अकेले होते तो उनसे पालि शब्दों के बर्मी उच्चारण को ले कर बहुत ऊहापोह होता। ऐसी अवस्था में कभी सयाजी ऊ बा ल्विन आ जाते तो वे इन वार्ताओं में बहुत दिलचस्पी लेते। पालि का मागधी उच्चारण बर्मा पहुँचते-पहुँचते कितना बदल गया, यह देख कर मुझे बहुत आश्चर्य होता। इस चर्चा-परिचर्चा में इस बदलाव के कुछ फार्मूले उभर कर आए। इससे बर्मी अक्षरों में छपी पालि भाषा का अर्थ समझना मेरे लिए बहुत सरल हो गया। उन दिनों परम पूज्य गुरुदेव सयाजी ऊ बा खिन से विपश्यना भी सीख चुका था और उसका नित्य नियमित अभ्यास भी करता था। इस कारण पालि तिपिटक पढ़ने की बड़ी उत्कंठा जागी। विधिवत व्याकरण-सम्मत पालि भाषा के अध्ययन के लिए मेरे पास समय नहीं था। परंतु अब बर्मी लिपि में लिखे गए पालि ग्रंथों को मागधी उच्चारण के आधार पर समझना बहुत सरल हो गया। अतः मूल बुद्ध वाणी के आधार पर ऊ ता म्या से विपश्यना साधना संबंधी चर्चा चल पड़ती तो सयाजी ऊ बा ल्विन उसमें बहुत रस लेते। इस विषय में मेरी गति देख कर उन्होंने एक दिन मुझे कल्याणमित्र के नाम से संबोधित किया। मुझे यह बहुत अटपटा लगा। मैंने कहा, 'सयाजी यह उचित नहीं। यह विरुद तो भगवान बुद्ध का है।' इस पर ऊ ता म्या ने कहा कि केवल भगवान बुद्ध का ही नहीं, किसी भी कुशल धर्माचार्य का है। मैंने कहा कि मैं तो धर्माचार्य भी नहीं। मैं तो एक धर्म-पथिक हूं। इस पर सयाजी ऊ बा ल्विन ने कहा कि इससे अधिक कोई क्या धर्माचार्य होगा? आप को धर्म का इतना गहरा ज्ञान है। आप सचमुच कल्याणमित्र ही हैं और उसके बाद उन्होंने मुझे सदा 'कल्याणमित्र' के नाम से ही संबोधित किया। पत्रों में भी यही संबोधन लिखते रहे।

जब क्रांतिकारी बर्मी सरकार ने देश के सभी व्यापार-धंधों का राष्ट्रीयकरण किया तो मुझे लगा कि मैं बहुत बड़े बंधन से मुक्त हो गया। अपने व्यापार-उद्योग में केवल धन कमाने में जो समय लगाता था, अब वह धर्म की पूंजी कमाने के लिए मिल गया। एक ओर पूज्य गुरुदेव के चरणों में बैठ कर पटिपत्ति विपश्यना के गहन अभ्यास में लग गया तो दूसरी ओर बुद्ध वाणी के परियत्ति के स्वाध्याय में। बरमी लिपि में लिखे गए पालि वाङमय का सही अर्थ समझ सकने के कारण अब यह अध्ययन मेरे लिए सरल हो गया। व्याकरण का ज्ञान भले अधूरा रहा परंतु संस्कृत, हिंदी और राजस्थानी के इतनी समीप होने के कारण पालि भाषा के अनेक

शब्दों को समझते हुए यह अध्ययन सरल हो गया। फिर भी कई शब्द ऐसे थे जिनके अर्थ समझ में नहीं आते थे। किसी ने मुझे बताया कि लंदन की पाटि टेक्स्ट सोसायटी का पालि-इंगलिस शब्द-कोश बहुत प्रमाणिक है। रंगून में पुस्तकों की दूकानों पर मुझे यह नहीं मिला। बाहर से मँगाने में भी असफल रहा। इस बीच सयाजी ऊ बा ल्विन बर्मी सरकार के राजदूत बन कर लंका गए। उन्होंने मेरी आवश्यकता पूरी की। वहां से एक प्रति मुझे भिजवा दी जिसे मैं आज भी काम में लेता हूं और उसे हाथ में लेते ही बहुधा सयाजी ऊ बा ल्विन का मुस्कराता हुआ चेहरा मानस पर उभर आता है। उन्हें अपने पुण्य में भागीदार बनाते हुए मेरा मन अत्यंत संतुष्ट प्रसन्न होता है।

समय पाकर सयाजी ऊ बा खिन ने मुझे वस्तुतः धर्मगुरु बना दिया। भारत में आया तो भदंत आनंद कौसल्यायनजी ने मुझे इसी कल्याणमित्र नाम से संबोधित करना शुरू कर दिया। अतः आरंभ में झिझक महसूस करते-करते सयाजी ऊ बा ल्विन द्वारा मेरे प्रति प्रयोग किया गया यह शब्द प्रचलित हो गया। गुरु कहलाने की अपेक्षा कल्याणमित्र कहलाना अधिक अच्छा लगा।

सयाजी ऊ बा ल्विन न केवल राष्ट्रीय विचारधारा के एक सबल नेता थे, न केवल राष्ट्रीय बर्मी शिक्षण आंदोलन के प्रबल प्रवर्तक और पोषक थे, न केवल निःस्वार्थ सेवा के प्रभावशाली शिक्षक थे, न केवल बर्मी साहित्य के मर्मज्ञ ही थे, बल्कि एक अत्यंत सरल स्वच्छ-हृदय गृहस्थ संत भी थे। जीवन में उनका सान्निध्य पाकर मैं धन्य ही हुआ। कल्याणलाभी ही हुआ।

कल्याणमित्र,
सत्यनारायण गोयन्का

जाग उठी मुस्कान

कुष्ठ-रोगियों के जीवन में धर्म-आलोक

मुंबई स्थित 'अकवर्थ कुष्ठ-रोग निर्मूलन केंद्र' १०५ वर्ष पुराना है। इसके निसर्गमय वातावरण में लगभग २२५ रोगी रहते हैं। उनमें से २७ पुरुष और १४ महिलाओं (कुल ४१ लोगों) को चुन कर १५ से २६ मई, ९७ तक एक दस दिवसीय शिविर का आयोजन किया गया, जिसकी आनापान और मैत्री विशेष प्रकार से पूज्य गुरुजी और माताजी ने स्वयं दी। पूज्य गुरुजी ने आनापान देने के समय ही समझाया कि शरीर में हुए कुष्ठ-रोग को मन का कुष्ठ रोग न बना लें। मन की निर्मलता बनी रहे तो शरीर के रोगों को मुस्कराते हुए सहन किया जा सकता है और फिर बाह्य उपचार द्वारा उनका निवारण भी आसान हो जाता है। इस बात से उत्साहित साधक बड़ी लगन से काम करते रहे और सब को ही अतिशय लाभ हुआ। साधना के दौरान सब को स्पष्ट संवेदना और अनित्यबोध की अनुभूति हुई। कुछ रोगी ऐसे भी थे जो प्रारंभ में पंद्रह मिनट भी नहीं बैठ सकते थे, वे अंततः अधिष्ठान की साधना पूरी कर सके। उनके मन में यह भाव जागा कि अगला शिविर लगे तो वे धर्मसेवा करेंगे। इस शिविर की सहज सफलता से यह निश्चित कहा जा सकता है कि कुष्ठ-रोगियों के लिए यह साधना बहुत फलदायी हो सकती है।

अस्पताल-प्रांगण में शिविर चलता रहा पर जो लोग शिविर में सम्मिलित नहीं हो सके थे, उनके वार्ड में जाकर विधिवत आनापान दी गयी और सायंकालीन प्रवचनों का प्रसारण सीधे उनके कक्षों में होता रहा। हर कक्ष में धर्मसेवक उनके पास जाकर काउंसिलिंग करते रहे। शिविर की मैत्री के दिन जब पूज्य गुरुजी व माताजी वहां आने वाले थे तो सभी वार्डों के रोगियों ने उनसे सीधे मैत्री लेने की इच्छा व्यक्त की। अतः सब को साधना-कक्ष में लाया गया। जो स्वयं चल कर आने में असमर्थ थे उनके लिए चल-कुर्सी और स्ट्रेचर का भी उपयोग किया गया। मंगल-मैत्री का वातावरण बिल्कुल दिव्य था। मैत्री के बाद वहां पर आए हुए उनके सगे-संबंधियों को भी पूज्य गुरुजी ने अलग से संबोधित किया। विभिन्न अस्पतालों के अधिष्ठाता तथा अन्य अधिकारियों ने भी पूज्य गुरुजी से धर्म-चर्चा की और तय किया गया कि अन्य कुष्ठ-निवारण केंद्रों में भी ऐसे शिविर लगाए जायँ ताकि अधिकाधिक रोगियों को इसका लाभ मिल सके।

इस योजना के अंतर्गत नई मुंबई के समीप पनवेल के 'शांतिवन कुष्ठ निर्मूलन केंद्र' में आगामी जुलाई में शिविर लगाने की व्यवस्था की जा रही है। उसके संचालकों में से कुछ ने पहले ही विपश्यना का लाभ लिया हुआ है। इस प्रकार अन्य केंद्रों में भी शिविर लगाने की व्यवस्था हो सकी तो कुष्ठ-रोगियों की मुस्कान लौटाने में विपश्यना निश्चय ही एक क्रांतिकारी योजना सिद्ध होगी। संसार के सारे दुखियारों के दुख दूर हों।